।। ॐ श्रीपरमात्मने नमः ।।

क्या आप ईश्वर को मानते हैं?

राजेन्द्र कुमार धवन

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

क्या आप ईश्वरको मानते हैं?

[परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके विचारोंपर आधारित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

राजेन्द्र कुमार धवन

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

क्या आप ईश्वरको मानते हैं?

क्या आप ईश्वरको मानते हैं? इस प्रश्नका उत्तर 'हाँ' में देनेवाले व्यक्ति बहुत मिल जायँगे, पर ईश्वरको चाहनेवाला शायद ही कोई मिले! इससे एक सन्देह उत्पन्न होता है कि क्या अपनेको ईश्वरवादी (आस्तिक) कहनेवाले सब लोग वास्तवमें ईश्वरको मानते हैं? कारण कि यह नियम है कि जो ईश्वरको मानेगा, वह ईश्वरको चाहेगा भी। परन्तु देखनेमें यह आता है कि लोग मानते हैं ईश्वरको, चाहते हैं संसारको! यही कारण है कि लोग ईश्वरकी बातें करते हैं, कथा सुनते हैं, सत्संग करते हैं, ज्ञानकी बातें कहते हैं, पर रुपये सामने आते ही सब भूल जाते हैं, वैसे ही जैसे आकाशमें ऊँचाईपर उड़ता हुआ गीध पृथ्वीपर पड़े मांसको देखते ही उसपर आ गिरता है! कारण यही है कि उनके अन्तःकरणमें महत्त्व रुपयोंका है, ईश्वरका नहीं। उनका इष्टदेव रुपया है, ईश्वर नहीं। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने पहले ही लिख दिया था—

ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात।
कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात॥

(मानस, उत्तर० ९९ क)

एक गुरुजीने बिल्ली पाल रखी थी। जब वे शिष्योंको पढ़ाते थे, तब वह बिल्ली स्थिर होकर बैठ जाती थी और वे उस बिल्लीके सिरपर दीपक रख देते थे। उस दीपकके प्रकाशमें वे शिष्योंको पढ़ाते थे। सभी लोग बिल्लीकी इस एकाग्रताकी बहुत प्रशंसा करते थे। एक शिष्यको कोई बात सूझी। वह एक दिन चूहा छिपाकर ले आया। जब गुरुजी पढ़ा रहे थे, तब उसने चुपकेसे चूहेको छोड़ दिया। चूहेको देखते ही बिल्ली उसपर झपट पड़ी। दीपक गिर गया और अँधेरा छा गया! वास्तवमें बिल्लीकी एकाग्रता तभीतक थी, जबतक उसके सामने चूहा नहीं आया। इसी प्रकार लोभी मनुष्य तभीतक ज्ञानी बनकर रहता है, जबतक उसके सामने रुपया नहीं आता। कामी मनुष्य तभीतक धर्मात्मा बनकर रहता है, जबतक उसके सामने स्त्री नहीं आती।

मनुष्यशरीर कर्मयोनि है। इस शरीरमें मनुष्य नया पुण्यकर्म कर सकता है। भगवान्‌ने अपना कल्याण करनेके लिये जीवको मनुष्यशरीर दिया है और साथमें पर्याप्त साधन-सामग्री भी दी है। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष—इन चारोंमें धर्मका पालन तथा मोक्षकी प्राप्ति करना मनुष्यके 'पुरुषार्थ' के अधीन है, और अर्थ (धन) तथा काम (भोग)—ये दोनों मनुष्यके 'प्रारब्ध' के अधीन हैं। जैसे मनुष्य लोटेको चाहे बाल्टीमें डुबोये, चाहे समुद्रमें डुबोये, उसमें एक लोटाभर पानी ही आयेगा, वैसे ही मनुष्य कितना ही उद्योग करे, उसे उतना ही धन मिलेगा, जितना उसके प्रारब्धमें है। उद्योग करना मनुष्यका कर्तव्य है, जिसमें वह स्वतन्त्र है; परन्तु फल भोगनेमें वह परतन्त्र है—'**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन**' (गीता २। ४७)। अब विचार करें कि जो वस्तु हमारे पुरुषार्थके अधीन है, उसे तो हम प्रारब्ध (भाग्य) अथवा भगवान्‌के भरोसे छोड़ देते हैं कि भाग्यमें लिखा होगा तो साधन-भजन होगा, भगवान्‌की कृपा होगी तो साधन-भजन होगा, आदि। परन्तु जो वस्तु प्रारब्धके अधीन है, उसके लिये रात-दिन परिश्रम करते हैं—यह कितने आश्चर्यकी बात है! बिल्कुल उल्टी बुद्धि है!

दूसरी दृष्टिसे विचार करें तो कोई व्यक्ति यह प्रतिज्ञा नहीं कर सकता कि मैं प्रतिदिन इतनी संख्यामें रुपये कमाऊँगा; परन्तु वह यह प्रतिज्ञा कर सकता है कि मैं प्रतिदिन इतनी संख्यामें नामजप करूँगा। इससे सिद्ध होता है कि रुपये कमाना, सांसारिक वस्तुओंका संग्रह करना तो हमारे वशकी बात नहीं है, पर नामजप करना, साधन-भजन करना हमारे वशकी बात है। जो हमारे वशकी बात नहीं है, उसके लिये तो रात-दिन लगे रहते हैं, पर जो हमारे वशकी बात है, उसकी उपेक्षा करते हैं। इससे अनुमान लगा लें कि हम कितने ईश्वरवादी हैं?

रुपये कमानेमें तो हम समयका ध्यान नहीं रखते, पर भगवान्‌का भजन, ध्यान, नामजप आदि करनेके लिये कठिनाईसे एक-दो घण्टेका समय निकालते हैं (अधिकतर तो इतना समय भी नहीं निकालते!)। उन एक-दो घण्टोंमें भी भगवान्‌का चिन्तन तो बलपूर्वक करते हैं, पर संसारका चिन्तन अपने-आप होता है! जप, ध्यान, पाठ-पूजा आदि करते समय भी दृष्टि बार-बार घड़ीकी ओर जाती है। बार-बार माला उठाकर देखते हैं कि कितनी माला बाकी रह गयी! जप-ध्यानका समय पूरा होते ही ऐसे उठकर भागते हैं, जैसे छुट्टीकी घण्टी बजनेपर स्कूलके बच्चे! जप-ध्यान करते समय उतना आनन्द नहीं आता, जितना जप-ध्यान करके उठनेमें आता है! इससे अनुमान लगा लीजिये कि हम कितने ईश्वरवादी हैं?

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज कहते थे कि *'जो साधक होता है, वह चौबीसों घण्टे साधक होता है। चौबीस घण्टेमें एक मिनट भी साधन नहीं हुआ तो वह साधक कहलानेयोग्य नहीं है'*। हम चौबीस घण्टेमें कितने घण्टे साधन (पारमार्थिक कार्य)-में लगाते हैं और कितने घण्टे सांसारिक कार्यमें लगाते हैं—इसपर स्वयं विचार करें। यदि हम अधिक घण्टे सांसारिक कार्योंमें लगाते हैं तो फिर हम ईश्वरके भक्त हुए या संसारके भक्त? सच्चा ईश्वरवादी तो सांसारिक कार्य करते समय भी ईश्वरको नहीं भूलता।

यदि हम ईश्वरको माननेवाले हैं तो हमारे हृदयमें ईश्वरका महत्त्व होना चाहिये, संसारका नहीं। ईश्वरको मानने या न माननेका उतना महत्त्व नहीं है, जितना महत्त्व इस बातका है कि हमारी ईश्वरमें कितनी प्रियता है, कितनी महत्ता है। कहींसे रुपये मिलनेवाले हों तो उसके लिये जो व्यक्ति साधन-भजन, सत्संगको यह सोचकर छोड़ देता है कि यह तो हम फिर भी कर लेंगे, अभी तो रुपये कमा लें, उसे ईश्वरवादी कैसे माना जाय? कारण कि उसके हृदयमें रुपयोंका जितना महत्त्व है, उतना ईश्वरका नहीं है। उसके लिये ईश्वर रुपयोंसे भी घटिया हो गया! सन्तोंने वास्तविक बात कही है कि *'रुपयोंसे वस्तु श्रेष्ठ है, वस्तुसे व्यक्ति श्रेष्ठ है, व्यक्तिसे विवेक श्रेष्ठ है और विवेकसे भी परमात्मतत्त्व श्रेष्ठ है'*। परन्तु जिनकी बुद्धि रुपयोंमें ही अटकी हुई है, वह परमात्मातक कैसे पहुँचेगा? परमात्मा तो उसके लिये अत्यधिक दूर हो गये!

सत्संग कर रहे हैं और पासमें ही किसीके लड़नेकी आवाज आ जाय तो लोग उठकर लड़ाई देखने चले जाते हैं। सत्संगसे अधिक तो लड़ाई-झगड़ेका महत्त्व हुआ! व्यापार करनेके लिये, पैसा कमानेके लिये लोग जप, ध्यान, सत्संग आदिको भी छोड़ देते हैं। ऐसे लोगोंका भगवान्‌पर इतना भी विश्वास नहीं है कि सत्संग-भजन करनेसे हमें घाटा नहीं लगेगा। ईश्वरके विधानसे जो मिलनेवाला है, वह मिलेगा ही। फिर किस आधारपर कहते हैं कि हम ईश्वरको मानते हैं अथवा हमारा ईश्वरपर विश्वास है?

कहीं एक अँग्रेजी वाक्य पढ़ा था—

'Man will read, write, speak, fight and even die for religion, but never live for it.'

अर्थात् मनुष्य धर्मके लिये पढ़ लेगा, लिख देगा, बोल देगा, लड़ लेगा, यहाँतक कि मर भी जायगा, पर धर्मके लिये कभी जीयेगा नहीं (धर्मको जीवनमें नहीं उतारेगा)!

पूज्यपाद स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराजने कहा है कि—*'अगर आप भगवान्‌को मानते हैं तो उस मान्यताका परिचय आपके जीवनसे हो, केवल विचारोंसे नहीं। हमारा जीवन बता दे कि हम भगवान्‌को मानते हैं'*। यदि हम अपनेको ईश्वरवादी मानते हैं तो हृदयपर हाथ रखकर विचार करें कि हमपर किसका असर अधिक पड़ता है, भगवत्सम्बन्धी बातोंका अथवा रुपयोंका, स्त्रीका, मान-बड़ाईका, निन्दा-तिरस्कारका? रुपये, स्त्री आदिके लिये हम कितना त्याग करते हैं, भूख-प्यासकी भी परवाह नहीं करते, पर ईश्वरके लिये हमने कितना त्याग किया है? रुपये कमानेके लिये हम कितनी प्रतिकूलता सहन करते हैं, दूसरेकी डाँट-फटकार भी सह लेते हैं, पर ईश्वरके लिये हमने कितनी प्रतिकूलता सही है?

सच्चा आस्तिक ईश्वरको चाहता है, ईश्वरसे नहीं चाहता। यदि हम ईश्वरको मानते हैं तो ईश्वरसे हमारा लगाव किसी वस्तुको लेकर नहीं होना चाहिये। ईश्वरकी पूजा-उपासना करनेसे हमें धन मिल जायगा, हमारा रोग दूर हो जायगा, हमारा कष्ट मिट जायगा—इस प्रकार ईश्वरको अपनी कामना-पूर्तिका माध्यम नहीं बनाना चाहिये। यदि हम किसी वस्तुको पानेके लिये ईश्वरकी आराधना करते हैं तो ईश्वर उस वस्तुकी प्राप्तिका 'साधन' हुआ और वह वस्तु 'साध्य' हुई। इसका परिणाम यह होगा कि उस वस्तुसे हमारा सम्बन्ध जुड़ जायगा और ईश्वरसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जायगा! तात्पर्य है कि यदि हम कामना-पूर्तिके लिये ईश्वरकी उपासना करते हैं तो हम उस काम्य वस्तुके ही भक्त हुए, ईश्वरके नहीं। जब भगवान्‌ने वर माँगनेके लिये कहा, तब भक्तराज प्रह्लादजी बोले—

यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक्॥

(श्रीमद्भा० ७। १०। ४)

'जो सेवक आपसे अपनी कामनाएँ पूर्ण कराना चाहता है, वह सेवक नहीं, वह तो बनिया (व्यापारी) है।'

यदि हम ईश्वरको मानते हैं तो ईश्वर और उससे सम्बन्धित बातें हमें महत्त्वपूर्ण तथा प्रिय लगनी चाहिये। विचार करें कि हम धनी, ऊँचे पदवाले व्यक्तिका अधिक आदर करते हैं या साधक, भक्त, सन्त आदिका? हमारे हृदयमें किसका आदर अधिक है? किसी व्यक्तिसे हमारा प्रेम रुपयों आदिको लेकर है या भगवान्‌को लेकर? हम दूसरोंसे बातचीत करते हैं तो उसका विषय अधिकतर क्या होता है? हमारे मनमें अधिकतर किसका चिन्तन होता है? हमें अधिकतर कैसी बातें पसन्द आती हैं? हमारी स्वाभाविक रुचि किन वस्तुओंमें है? हमें किस प्रकारके स्वप्न अधिक आते हैं? किन बातोंसे हमारा चित्त प्रसन्न होता है? इन बातोंपर विचार करनेसे हमें अपनी वास्तविक स्थितिका बोध हो जायगा।

अन्तमें यह प्रश्न उठता है कि ईश्वरपर हमारा विश्वास कैसे दृढ़ हो? इसके लिये तीन श्रेष्ठ साधन हैं—भगवान्‌के अनन्य भक्तोंका चरित्र पढ़ना-सुनना, भगवद्विश्वासी भक्तोंका संग करना, और सच्ची लगनके साथ भगवान्‌से प्रार्थना करना कि 'हे नाथ! मुझे अपना विश्वास प्रदान करो; हे प्रभो! मेरा आपके चरणोंमें प्रेम हो जाय'।

सबसे बड़ा रुपया या ईश्वर?

तत्त्वदर्शी महापुरुषोंके द्वारा कही गयी एक अत्यन्त मूल्यवान् बात हम पहले बता चुके हैं कि *'रुपयोंसे वस्तु श्रेष्ठ है, वस्तुसे व्यक्ति श्रेष्ठ है, व्यक्तिसे विवेक श्रेष्ठ है और विवेकसे भी परमात्मतत्त्व श्रेष्ठ है'*। इस बातपर प्रत्येक समझदार मनुष्यको विशेषतासे विचार करना चाहिये।

सन्तोंने रुपयेको संसारकी सबसे निकृष्ट वस्तु बताया है। कारण कि रुपया वस्तु-विनिमयका साधन होनेसे केवल विनिमयके काम ही आता है, खुद कुछ भी काम नहीं आता। इसलिये सन्तोंने रुपयेको मल, मूत्र तथा रद्दीसे भी निकृष्ट बताया है; क्योंकि मल सूअर आदि पशुओंके काम आता है, मूत्र अनेक रोगोंकी चिकित्सामें काम आता है और रद्दी आग जलाने आदिके काम आती है, पर रुपया किसीके कुछ काम नहीं आता। तात्पर्य है कि रुपया खुद किसी काम नहीं आता, अपितु उसका त्याग अर्थात् खर्च ही काम आता है।

रुपयोंसे वस्तु श्रेष्ठ है; क्योंकि वस्तु खुद खाने, पीने, पहनने, ओढ़ने आदिके काम आती है। वस्तुओंसे ही समस्त प्राणियोंका जीवन चलता है। मनुष्यका जीवन-निर्वाह अन्न-जल-वस्त्र आदि वस्तुओंसे ही होता है। जब चौरासी लाख योनियोंका जीवन रुपयेके बिना चल सकता है, तो फिर एक मनुष्ययोनिका जीवन रुपयेके बिना क्यों नहीं चल सकता?

वस्तुओंसे भी पशु-पक्षी श्रेष्ठ हैं; क्योंकि वस्तुएँ जड़ (निष्प्राण) हैं, पशु-पक्षी चेतन (प्राणयुक्त) हैं। पशु-पक्षी प्राकृतिक दोषोंको दूर करके मनुष्यमात्रकी अनेक प्रकारसे सहायता करते हैं। जहाँ पशु-पक्षी रहते हैं, वह जंगल शुद्ध रहता है। वहाँकी हवा भी शुद्ध तथा नीरोग करनेवाली होती है। अशुद्धि, गन्दगी वहीं आती है, जहाँ मनुष्य रहते हैं! इसलिये मनुष्य भी शुद्ध हवा ग्रहण करनेके लिये जंगलमें सैर करने जाते हैं!

पशु-पक्षियोंमें भी गाय सबसे श्रेष्ठ है। गायका शरीर जितना पवित्र है, उतना पवित्र किसी भी प्राणीका शरीर नहीं है। प्राणियोंके मल-मूत्र महान् अपवित्र होते हैं, पर गायके मल-मूत्र (गोबर-गोमूत्र) भी महान् पवित्र होते हैं! किसी स्थानको पवित्र करनेके लिये वहाँ गोबर लीपा जाता है। गायके गोबर-गोमूत्रमें तथा घी-दूधमें अनेक रोगोंका नाश करनेकी अद्भुत शक्ति है!

गायसे मनुष्य श्रेष्ठ है; क्योंकि मनुष्यमें जो विवेकशक्ति है, वह गाय आदि किसी भी प्राणीमें नहीं है। उस विवेक-शक्तिसे मनुष्य सत्-असत् और कर्तव्य-अकर्तव्यको जानकर अपना कल्याण कर सकता है, सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करके महान् आनन्दको प्राप्त कर सकता है। अपनी विवेक-शक्तिका सदुपयोग करके मनुष्य अपना इतना विकास कर सकता है, जिसकी कोई सीमा नहीं है! इस विवेकका सदुपयोग करके वह विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारोंके द्वारा मनुष्य-जातिकी महान् सेवा कर सकता है। अपने विवेकको महत्त्व देकर वह ऊँचे-से-ऊँचे स्वर्गादि लोकोंमें भी जा सकता है, यहाँतक कि जन्म-मरणसे सदाके लिये मुक्त होकर परमात्मतत्त्वको प्राप्त कर सकता है, नरसे नारायण बन सकता है!

विवेकसे भी परमात्मतत्त्व श्रेष्ठ है, जिसे प्राप्त करनेके बाद कुछ भी करना, जानना और पाना शेष नहीं रहता। उस परमात्मतत्त्वसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है—**'पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः'** (कठोपनिषद् १। ३। ११)।

उपर्युक्त विवेचनसे यह बात सिद्ध हो गयी कि रुपयेसे निकृष्ट कुछ नहीं है और परमात्मासे

श्रेष्ठ कुछ नहीं है। परन्तु कितने दुःखकी बात है कि वर्तमान समयमें मनुष्यने सबसे निकृष्ट रुपयेको सबसे श्रेष्ठ मान लिया है, मानो पैरोंमें धारण करनेयोग्य जूतेको सिरपर धारण कर लिया है! इस कारण मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है, वह अन्धा हो गया है, बेहोश हो गया है, पशुओंसे भी नीचे गिर गया है! रुपयोंको अधिक महत्त्व देनेके परिणामस्वरूप मनुष्यका कितना पतन हो गया है, इसकी किंचित् झाँकी देखिये—

चरित्रका नाश

अँग्रेजीकी एक प्रसिद्ध कहाचत है—

If wealth is lost, nothing is lost,
If health is lost, something is lost,
If character is lost, everything is lost.

अर्थात् धन गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया तो कुछ गया, और चरित्र गया तो सब कुछ गया! परन्तु आज लोगोंमें इस कहावतसे उल्टी ही मान्यता देखनेमें आ रही है—चरित्र गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया तो कुछ गया, और धन गया तो सब कुछ गया! रुपयोंका महत्त्व इतना बढ़ गया है कि उसके बदले अपना चरित्र भी बेचा जा रहा है। धनके लोभसे अच्छे घरोंकी स्त्रियाँ भी व्यभिचारमें प्रवृत्त हो रही हैं। विदेशोंमें तो स्त्रियाँ अपनेसे अत्यधिक बड़ी उम्रके (वृद्ध) धनवान् पुरुषके साथ भी विवाह कर लेती हैं कि यह बूढ़ा जल्दी मर जायगा तो इसका धन हमारे हाथ आ जायगा, फिर हम दूसरा विवाह कर लेंगी! टेलिविजनमें एक अभिनेत्रीके मुखसे यह कहते सुना था कि यदि रुपये मिलते हों तो मैं एक जानवरके साथ भी नृत्य कर लूँगी! समाजमें भी देखा जाय तो दुश्चरित्र धनीका जितना सम्मान किया जाता है, उतना सच्चरित्र निर्धनका नहीं।

धर्मका नाश

आज धार्मिक कार्योंमें भी रुपयोंकी ही महत्ता हो रही है। वास्तवमें धर्मका पालन रुपयोंसे नहीं होता। जहाँ धनकी महत्ता रहती है, वहाँ धर्मके रूपमें अधर्म ही रहता है। शास्त्रमें स्पष्ट कहा गया है—

अथैश्वर्यविमूढो हि श्रेयसो भ्रश्यते द्विजः।
अर्थसम्पद्विमोहाय विमोहो नरकाय च॥
तस्मादर्थमनर्थाख्यं श्रेयोऽर्थी दूरतस्त्यजेत्।
यस्य धर्मार्थमर्थेहा तस्यानीहा गरीयसी॥
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्।
योऽर्थेन साध्यते धर्म क्षयिष्णुः स प्रकीर्तितः॥
यः परार्थे परित्यागः सोऽक्षयो मुक्तिलक्षणः॥

(पद्मपुराण, सृष्टि० १९। २५०-२५३)

'धन-सम्पत्ति मोहमें डालनेवाली होती है और मोह नरकमें गिराता है। इसलिये कल्याणकामी पुरुषको अनर्थके साधन अर्थ (धन)-का दूरसे ही त्याग कर देना चाहिये। जो मनुष्य धर्मके लिये धनकी इच्छा करता हो, उसके लिये उस इच्छाका त्याग करना ही श्रेष्ठ है; क्योंकि कीचड़ लगाकर धोनेकी अपेक्षा कीचड़का स्पर्श न करना ही श्रेष्ठ है। धनके लिये जो धर्म किया जाता है, वह नाशवान्

माना गया है। परन्तु दूसरोंके हितके लिये जिस धनका त्याग किया जाता है, वह अक्षय तथा मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला होता है।'

परन्तु आज यह उल्टी रीति चल रही है कि धन पासमें न हो तो लोगोंसे चन्दा माँग-माँगकर इकट्ठा करते हैं और उससे यज्ञ, भण्डारा, रात्रि-जागरण आदि करवाते हैं। ऐसे अनुष्ठानोंके परिणामस्वरूप धर्म बढ़ना तो दूर रहा, उल्टे अधर्म बढ़ रहा है! लोगोंके हृदयमें धर्म और ईश्वरकी जगह धनका ही महत्त्व बढ़ रहा है। एक बार मुम्बईमें परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके सामने यह प्रस्ताव रखा गया कि गायोंकी सेवाके लिये पण्डालमें दान-पेटी रखी जाय, तो श्रीस्वामीजी महाराजने कहा कि 'लोगोंके हृदयमें पहलेसे ही रुपयोंका महत्त्व बैठा हुआ है, ऐसा करनेसे तो रुपयोंका महत्त्व और बढ़ेगा। मैं यहाँ ईश्वरका महत्त्व बढ़ाने आया हूँ, रुपयोंका महत्त्व बढ़ाने नहीं'।

यदि रुपये पासमें न हों तो धार्मिक अनुष्ठान न करनेमें कोई दोष नहीं है, पर चन्दा माँगकर धार्मिक अनुष्ठान करनेमें बड़ा दोष है। सन्तोंसे सुना है कि जैसे किसी धूनी रमानेवाले साधुसे एक व्यक्तिने आकर अंगार (जलता हुआ कोयला) माँगा और उस साधुने चिमटेसे अंगार उठाकर दे दिया तो चिमटेको क्या मिला? उसका मुँह काला हुआ और गरम हुआ! यही दशा चन्दा माँगनेवालेकी होती है!

धर्म-पालनके लिये धनकी जरूरत नहीं है। यदि ऐसी बात होती तो बेचारे गरीबलोग धर्मका पालन कैसे करते? वास्तवमें गरीबलोग जितना धर्मका पालन कर सकते हैं, उतना धनीलोग नहीं कर सकते। कारण कि धर्मका पालन धनसे नहीं, मनसे होता है। जिनके भीतर धनका महत्त्व है, वे आसुरी-सम्पत्तिवाले होते हैं। उनके भाव होते हैं—

आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः॥

(गीता १६। १५)

'हम धनवान् हैं, बहुत-से मनुष्य हमारे पास हैं, हमारे समान दूसरा कौन है? हम खूब यज्ञ करेंगे, दान देंगे और मौज करेंगे—इस तरह वे अज्ञानसे मोहित रहते हैं।'

जिसके हृदयमें रुपयोंका महत्त्व है, वह कभी धर्मात्मा नहीं हो सकता। वह कोई धर्मका कार्य भी करेगा तो लोग उससे पूरा लाभ नहीं उठा सकेंगे। लोभी आदमीका पैसा महान् अशुद्ध होता है।

विश्वासघात

विश्वासघातसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। अन्य पाप तो फल भुगताकर नष्ट हो जाते हैं, पर विश्वासघातरूपी महापाप कभी नष्ट नहीं होता। शास्त्रमें आया है—

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता राजन् कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥

(महाभारत, शान्ति० १७२। २५; २७१। ११)

'राजन्! ब्रह्महत्यारे, शराबी, चोर तथा व्रतभंग करनेवालोंके लिये तो शास्त्रमें प्रायश्चित्तका विधान है, पर कृतघ्नके उद्धारका कोई उपाय नहीं है।'

विश्वासघातिनां पुंसां मित्रद्रोहकृतां तथा।

तेषां गतिर्न वेदेषु पुराणेषु च का कथा॥

(स्कन्दपुराण, अव० रेवा० २०९। ९१-९२)

'विश्वासघात तथा मित्रद्रोह करनेवाले मनुष्योंकी गतिका वर्णन वेदोंमें भी नहीं मिलता, फिर पुराणोंका तो कहना ही क्या है!'

आज व्यापार-जगत्‌में विश्वासघात करना एक सामान्य बात हो रही है। दूसरेका पैसा, उधारका पैसा हड़पनेमें सब चतुर हो रहे हैं। नरकोंमें ले जानेके लिये यह चतुराई बहुत काम आती है! ऐसे लोगोंका न तो ईश्वरका विश्वास है कि उसकी कृपासे मिलेगा, न अपने भाग्यपर विश्वास है कि जो भाग्यमें लिखा है, वह अवश्य मिलेगा, और न अपनेपर विश्वास है कि हम मेहनत करके कमा लेंगे। विश्वास है धोखेपर, विश्वासघातपर, बेईमानीपर, ठगीपर कि किसी तरह मुफ्तमें दूसरेका पैसा मिल जाय! उनके भीतर यह विचार ही पैदा नहीं होता कि जब मौत आयेगी, तब एक कौड़ी भी साथ चलेगी नहीं और पाप रत्तीभर भी पीछे रहेगा नहीं!

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे नारी गृहद्वारि सुताः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोकमार्गे धर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

'शरीर छोड़ते समय धन तिजोरीमें पड़ा रह जाता है, पशु जहाँ-तहाँ बँधे रह जाते हैं, स्त्री घरके द्वारतक ही साथ देती है, पुत्र श्मशानतक साथ देते हैं और शरीर चितातक ही साथ रहता है। फिर परलोकमार्गमें एक धर्म ही जीवके साथ जाता है।'

× × ×

सेठजी को फिक्र थी, एक-एक के दस कीजिये,
मौत आ पहुँवी कि हजरत जान वापिस कीजिये।

× × ×

चार दिन है शानो-शौकत का खुमार, मौत की तुर्शी नशा देगी उतार।
जब उठायेंगे जनाजा मिल के चार, हाथ मल-मलकर कहोगे बार-बार।
किसलिये आये थे और क्या कर चले, जो यहाँ जोड़ा यहीं पर धर चले।

गरीबोंका तिरस्कार

रुपयोंका महत्त्व बढ़नेसे धनियोंका सम्मान और गरीबोंका तिरस्कार होना स्वाभाविक है। विचारपूर्वक देखें तो धनियोंका सम्मान गरीबोंके कारणसे ही है। यदि गरीब न होते, सभी धनी होते तो धनियोंका सम्मान कौन करता? धनी समझते हैं कि हम गरीबोंको कर्जा देते हैं, इसलिये हम बड़े हैं; पर विचार करें, कर्जा लेनेवाला यदि गरीब है तो कया कर्जा देनेवाला गरीब नहीं है? कर्जा लेनेवालेको रुपये चाहिये तो क्या कर्जा देनेवालेको रुपये नहीं चाहिये? वह भी तो रुपयोंके लिये ही कर्जा देता है! वास्तविक बात तो यह है कि ज्यों-ज्यों धन बढ़ता है, त्यों-त्यों हृदय संकुचित होता जाता है तथा गरीबी बढ़ती जाती है। बाहरसे जितना बड़ा धनवान्, भीतरसे उतना ही बड़ा गरीब! तात्पर्य है कि रुपये मिलनेसे गरीबी नहीं मिटती, अपितु रुपयोंकी इच्छा मिटनेसे गरीबी मिटती है। श्रीशंकराचार्यजी महाराज कहते हैं—

को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः श्रीमांश्च को यस्य समस्ततोषः॥

(प्रश्नोत्तरी ५)

'दरिद्र कौन है? विशाल तृष्णावाला, और धनवान् कौन है? जिसे सब तरहसे सन्तोष है।'

धनीलोग दान देते हैं तो उसमें बड़प्पनका अनुभव करते हैं और अपना प्रचार करते हैं। पर वास्तवमें देख जाय तो दान एक टैक्स है, कोई बड़ी बात नहीं है। जैसे अधिक आयपर इन्कम-टैक्स लगता है, वैसे ही अधिक धनपर दानरूपी टैक्स लगता है। कोई व्यक्ति इस बातमें बड़प्पनका अनुभव नहीं करता और प्रचार भी नहीं करता कि मैंने इतना इन्कम-टैक्स दिया है! परन्तु धनीलोग दान देते हैं तो अखबारमें छपवाते हैं, लाउडस्पीकरसे सूचना करवाते हैं, दान-दाताओंकी सूचीमें अपना नाम लिखवाते हैं। दान लेनेवाले भी अधिक रुपयोंके लालचसे दान-दाताओंको लोभ देते हैं कि यदि इतना रुपया दोगे तो आपके नामका शिलापट्ट लगाया जायगा, पत्रिकामें छपवाया जायगा, आदि। धनियोंके पास रुपया तो निर्धनोंका आया है, पर मुहर अपने नामकी लगाते हैं! लोग उनके आगे सिर झुकाते हैं तो उनकी छाती फूल जाती है। पर कोई उन्हें समझाये कि सेठजी, भूलमें मत रहिये, लोग आपके आगे नहीं, रुपयोंके आगे सिर झुका रहे हैं! आपके पास रुपये न रहें तो कोई आपकी ओर ताकेगा भी नहीं! यह रुपयोंकी इज्जत है, आपकी नहीं। आपकी तो फजीहत ही है!

धनीलोग अपनी वाहवाहीके लिये बाहर तो बड़े-बड़े दान करते हैं, पर उनके घरके लोग तथा नौकर दुःख पाते हैं! उन धनीलोगोंकी असलियत जाननी हो तो एकान्तमें उनके नौकरसे मिलकर पूछिये।

दहेजकी माँग

दहेज देना अथवा लेना दोष नहीं है, दोष है—दहेज माँगना अर्थात् लोभ। माता-पिता पुत्रकी ही भाँति कन्याको जन्म देते हैं, सब कठिनाइयाँ सहकर उसका पालन-पोषण करते हैं, पढ़ा-लिखाकर उसे योग्य बनाते हैं। फिर वे उस कन्याके लिये सुयोग्य वर ढूँढ़कर उसके साथ विवाह करते हैं। विवाहमें कन्या अपने माता-पिता, अपना गोत्र, अपना घर आदि सबका त्याग करके पतिके पास जाती है, पर पतिने क्या त्याग किया? वरपक्ष भी अपनी वंश-परम्परा चलानेके लिये उस कन्याको स्वीकार करता है। इसे 'कन्यादान' कहा जाता है*। यह सब जानते हैं कि दान लेनेवालेका हाथ नीचे रहता है और देनेवालेका हाथ ऊँचा रहता है। परन्तु आजकल उल्टी रीति चल रही है! देनेवाला तो नम्र होकर देता है और लेनेवाला अभिमानपूर्वक लेता है! इतना ही नहीं, वह बेशर्म होकर भूखे भिखारीकी तरह दहेज माँगता है। जैसे गीधकी दृष्टि मांसपर रहती है, वैसे ही उसकी दृष्टि दहेज

---

* कन्यादान अन्य दानोंकी तरह नहीं है। इसकी 'दान' संज्ञा तभीतक रहती है, जबतक कन्याकी सन्तान नहीं हो जाती। इसे 'दान' कहनेका तात्पर्य है कि जैसे एक बार दानमें दी हुई वस्तु दुबारा दानमें नहीं दी जाती, वैसे ही कन्यादान भी एक ही बार होता है, दुबारा नहीं—

सिंह गमन सज्जन वचन, कदलि फलै इक बार।
तिरिया तेल हम्मीर हठ, चढ़ै न दूजी बार॥

× × ×

सकृदंशो निपतति सकृत्कन्या प्रदीयते।
सकृदाह ददानीति त्रीण्येतानि सतां सकृत्॥

(महाभारत वन० २९४। २६; मनुस्मृति० ९। ४७)

'कुटुम्बमें धन आदिका बँटवारा एक ही बार होता है, कन्या एक ही बार दी जाती है और किसी वस्तुको देनेकी प्रतिज्ञा भी एक ही बार की जाती है। सत्पुरुषोंके ये तीनों कार्य एक ही बार हुआ करते हैं।'

(रुपयों)-पर रहती है, कन्यारूपी अमूल्य धनपर नहीं; क्योंकि रुपयोंके लोभसे उसकी बुद्धि पूरी तरह भ्रष्ट हो चुकी है। दहेजके लालचसे वह अपने बेटेको भी मानो नीलाम कर देता है! मँगता बननेमें उसे शर्म भी नहीं आती। शर्म आये भी क्यों; क्योंकि अब वह बिना सींग-पूँछके पशु बन चुका है! उसकी मनुष्यता मर चुकी है। इसलिये दहेजके लोभसे वह बहूको घरसे निकालनेमें अथवा उसकी हत्या कर देनेमें भी संकोच नहीं करता!

यद्यपि सरकारने दहेज-विरोधी कानून भी बनाया है, तथापि इस कानूनका सदुपयोग कम और दुरुपयोग अधिक हो रहा है। अधिकतर दुश्चरित्र स्त्रियाँ अपने पति तथा सास-ससुरको परेशान करनेके लिये इस कानूनकी आड़ लेती हैं, और जो वास्तवमें दहेज-पीड़िता स्त्रियाँ हैं, वे न्यायसे वंचित रह जाती हैं! परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज कहते थे कि यह कुप्रथा दहेज न देनेसे बन्द नहीं होगी, अपितु दहेज न लेनेसे बन्द होगी।

पारस्परिक सद्भावका नाश

पहले कुटुम्बमें, समाजमें, गाँवमें, नगरमें, प्रान्तमें, देशमें, विश्वमें मानव-समाजके बीच जो पारस्परिक सद्भाव था, एकता थी, प्रेम था, उसे वर्तमानमें रुपयोंके महत्त्वने नष्ट कर दिया है। अब प्रत्येक सम्बन्धके बीचमें रुपया मुख्य हो गया है। गुरु-शिष्यके सम्बन्धमें, पिता-पुत्रके सम्बन्धमें, पति-पत्नीके सम्बन्धमें, सभी सम्बन्धोंमें रुपयोंकी ही प्रधानता हो रही है! जो गुरु कभी सबका स्वामी हुआ करता था, वह आज खुद धनका दास बन गया है! रुपये इकट्ठे करनेके लिये वह तरह-तरहके नाटक खेल रहा है, अभिनय कर रहा है। केवल कल्याणका सम्बन्ध रखनेवाले गुरु-शिष्यके पवित्र सम्बन्धमें भी रुपयोंकी मुख्यता हो रही है! गुरु उसी चेलेकी खोजमें रहता है, जिससे रुपये मिलनेकी सम्भावना हो अथवा जो रुपये कमाकर दे सके। धनीलोग गुरुजीके पास जाते हैं तो गुरुजी ललचायी आँखोंसे उनकी तरफ ताकते रहते हैं कि कब ये रुपये निकालनेके लिये अपनी जेबमें हाथ डालेंगे! पर धनीलोग भी जल्दी पिघलनेवाले नहीं होते। वे जेबमेंसे रूमाल निकाल लेंगे, पर रुपया नहीं निकालेंगे! पाखण्डी गुरु रुपयोंके बदले भगवान्‌को, मुक्तिको बेचना चाहते हैं और चेले रुपयोंके बदले गुरुको खरीदना चाहते हैं। गुरुकी दृष्टि चेलेके धन और स्त्रीपर रहती है तथा चेलेकी दृष्टि गुरुकी गद्दी अथवा आश्रमपर रहती है।

रुपयोंके लोभने प्रेमको खा लिया है। कोई किसीकी सहायता, सेवा या उपकार भी करता है तो उसमें भी उसकी दृष्टि पैसा कमानेकी तरफ ही रहती है। बिना पैसेके कोई किसीके लिये कुछ करना नहीं चाहता। जो धर्मके नामपर एक नहीं होते, वे भी रुपयोंके लिये (बाहरसे) एक हो जाते हैं! धर्म रुपयोंसे भी घटिया हो गया! लोग साधकोंसे, सन्तोंसे तो नाराज हो जायँगे, पर जिनसे रुपयोंका लाभ होता हो, उनसे नाराज नहीं होंगे। विचार करें, इससे रुपयोंका महत्त्व सिद्ध हुआ या ईश्वरका?

पापका बाप—लोभ

जो समाजके मुख्य व्यक्ति कहलाते हैं, उनकी बुद्धि भी रुपयोंके लोभने भ्रष्ट कर दी है! समाजके प्रत्येक पदपर व्यक्ति मानो दूसरोंको लूटनेके लिये बैठा है! डॉक्टरकी दृष्टि रोगीकी नीरोगताकी तरफ नहीं रही, अपितु रुपयोंकी तरफ हो गयी कि रोगीसे कैसे अधिक-से-अधिक रुपये ऐंठे जायँ! पहले

वैद्यलोग रोगीकी नब्ज आदि देखकर अपनी बुद्धि लगाते थे और रोगका निदान करते थे, पर अब डॉक्टर सीधे तरह-तरहकी मशीनी जाँच लिख देते हैं; क्योंकि उन्हें प्रत्येक जाँचमें कमीशन मिलती है। इतना ही नहीं, सुननेमें तो यहाँतक आया है कि उत्तरप्रदेशके एक कॉलेजमें बिना पढ़ाये ही रुपये लेकर डॉक्टरकी डिग्री दे दी जाती है! ऐसे डॉक्टरोंसे रोगियोंकी क्या दशा होगी! स्कूल-कॉलेजोंमें दाखिला भी 'डोनेशन' (रिश्वत) देकर मिलता है। अध्यापक स्कूलमें भलीभाँति नहीं पढ़ाते, जिससे विद्यार्थी ट्यूशन लगानेके लिये मजबूर हो जाय। स्कूल-कॉलेज केवल रुपये कमानेके माध्यम बनते जा रहे हैं।

रुपयोंके लोभसे संसारमें इतनी भयंकर-भयंकर बुराइयाँ फैल रही हैं, जिनकी कल्पनासे भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं! बड़े शहरोंमें युवा लड़कोंका अपहरण करके उनके गुर्दे आदि निकालकर बेच दिये जाते हैं। रुपयोंके लिये गोमाताकी हत्या की जा रही है! रुपयोंके लोभसे जीव-हत्या, गर्भपात, देह-व्यापार, अपहरण, देशद्रोह आदि बड़े-बड़े पाप हो रहे हैं! रुपयोंके लोभसे तरह-तरहके अत्यन्त हानिकारक नशीले पदार्थों (ड्रग्स)-का व्यापार चल रहा है, जिससे युवावर्गका जीवन भ्रष्ट हो रहा है। खाद्य-पदार्थोंमें भी रुपयोंके लोभसे तरह-तरहकी नकली तथा जहरीली चीजें मिलायी जा रही हैं। दूध, घी, मावा आदि भी नकली तथा जहरीले बन रहे हैं। खानेके शुद्ध पदार्थ मिलने दुर्लभ हो रहे हैं! रुपयोंके लोभसे आज देशके रक्षक भी भक्षक हो रहे हैं। तथाकथित नेतालोग रुपये इकट्ठा करनेके लिये ही कुर्सीपर बैठते हैं, न कि जनताकी सेवा करनेके लिये। पहले जमानेमें डाकूलोग डाका डालने आते थे तो लोग रक्षाके लिये पुलिसको बुलाते थे, पर अब वे डाका डालने आते हैं तो पुलिसको साथ लेकर आते हैं! बड़े-बड़े अपराधी भी रुपये देकर कानूनके शिकंजेसे सुगमतापूर्वक छूट जाते हैं और आजाद घूमते हैं। ईश्वर, धर्म और शासनका भय किसीको नहीं रहा है। रुपयोंके लोभसे समाजमें जितने पाप हो रहे हैं, उनकी गणना नहीं की जा सकती!

पहले जब समाजमें ईश्वरकी, धर्मकी मुख्यता थी, तब लोग आजकी अपेक्षा अधिक सुखी थे, लड़ाई-झगड़े कम होते थे, अपराध कम होते थे। परन्तु आज रुपयोंकी मुख्यता हो जानेसे लोग अधिक-से-अधिक दुःखी होते जा रहे हैं, घर-घर लड़ाई-झगड़े बढ़ते जा रहे हैं, अपराध दिनोंदिन बढ़ रहे हैं।

जिसके हृदयमें ईश्वरकी मुख्यता है, उसके हृदयमें शान्ति है, चाहे वह करोड़पति हो, चाहे उसके पास एक पैसा न हो! परन्तु जिसके हृदयमें रुपयोंकी मुख्यता है, उसके हृदयमें अशान्ति है, चाहे वह धनी-से-धनी हो, चाहे गरीब-से-गरीब हो। जंगलमें एक झोपड़ीमें बैठे लँगोटीधारी साधुको राजालोग भी 'महाराज' कहकर प्रणाम करते हैं; क्योंकि उसके पास अविनाशी धन (ईश्वर) है। एक बार कोई अत्यधिक धनी सेठ भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)-के पास आया और बोला कि आपसे एकान्तमें कुछ बात करनी है। भाईजीने उसे एकान्तमें बुलाया और पूछा कि क्या बात है, तो वह सेठ फूट-फूटकर रोने लग गया! भाईजीने कहा कि बात तो बताओ, रोते क्यों हो? वह सेठ बोला कि पहले मुझे जी भरकर रो लेने दो; क्योंकि मेरा रोना सुननेवाला भी कोई नहीं है! यह दशा है अधिक धनवालोंकी!

तात्पर्य यह निकला कि जो वस्तु-विनिमयका 'साधन' था, वह अब 'साध्य' बन गया है। मनुष्योंके द्वारा पैदा किये गये रुपये अब भस्मासुर बनकर मनुष्योंका ही नाश कर रहे हैं! रुपयोंके लोभी व्यक्ति दुनियाको नरक बनाते जा रहे हैं। किसीने ठीक ही कहा है—***'एक मासूम-सा बच्चा, बड़ोंकी देखकर दुनिया, बड़ा होनेसे डरता है!'***।

रुपया अपनी जगह बहुत कामका है, पर उसे अधिक महत्त्व देनेसे मनुष्यकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। जूती पैरोंके लिये बहुत कामकी है, पर कोई उसे अपने सिरपर धारण कर ले उसे आप क्या कहेंगे? इसलिये मनुष्यमात्रका कर्तव्य है कि वह रुपयोंको वस्तु-विनिमयका साधन ही रहने दे, वस्तुओंके द्वारा अपना जीवन-निर्वाह तथा दूसरोंकी सेवा करे और अपने विवकको महत्त्व देकर परमात्मप्राप्तिके लिये तत्पर हो जाय, जिसकी प्राप्तिमें ही मनुष्यजीवनकी पूर्णता है।